डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी

अष्टछाप की कविता यानी भक्ति, काव्य एवं संगीत की त्रिवेणी

पुष्टिमार्ग के प्रतिष्ठाता महाप्रभु वल्लभाचार्य की भक्ति पद्धति को भक्तिकाल के जिन प्रमुख आठ कवियों ने अपनी काव्य प्रतिभा से परिपुष्ट किया था, उन्हें 'अष्टछाप' या 'अष्टसखा' के नाम से जाना जाता है। ये आठ कवि हैं : सूरदास, परमानंददास, कुंभनदस, कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास गोविन्द स्वामी और छीत स्वामी। इनमें से प्रथम चार श्रीमद् वल्लभाचार्य के तथा परवर्ती चार कवि गोस्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य थे।

कृष्णभक्ति शाखा के ये आठों कवि परमभक्त होने के साथ-साथ काव्य-मर्मज्ञ और सुमधुर गायक थे। ये सभी ब्रज क्षेत्र के गोवर्द्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तन सेवा करते हुए पद रचना किया करते थे। वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित कवियों की रचनाओं में भक्ति की जो धारा प्रवाहित हुई है, वह अपने अन्त:करण में वात्सल्य, सख्य, माधुर्य, दास्य आदि भावों को समेटे हुए हैं। उत्तर भारत में सगुण भक्ति को प्रतिष्ठित करने में इन कवियों का अवदान अविस्मरणीय है। लौकिक एवं अलौकिक दोनों दृष्टियों से इनकी रचनाएँ विशिष्ट हैं।

वल्लभाचार्यजी के शिष्य तथा कला-साहित्य, एवं संगीत मर्मज्ञ विट्ठलनाथजी ने इन ८ कवियों को अपनी प्रशंसा से विभूषित कर आशीर्वाद की छाप लगायी थी, यही कारण है कि ये रचनाकार 'अष्टछाप' के नाम से सुख्यात हुए। श्रीनाथजी की लीला में अंतरंग सखा के रूप में साथ रहने के कारण इन्हें 'अष्टसखा' भी कहा जाता है। सं० १६०२ में गोस्वामी विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की थी। कुछ विद्वानों की दृष्टि में 'अष्टछाप' की स्थापना सं० १६२२ (१५६५ ई०) में हुई थी। अष्टछाप के कवियों का रचनाकाल सं० १५५५ से सं० १६४२ तक स्वीकार किया जाता है।

अष्टछाप के संस्थापक गोसाई विट्ठलनाथ महाप्रभु वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र थे, उनका जन्म पौष कृष्ण ९ सं० १५७२ शुक्रवार को काशी के निकट हुआ था। वल्लभाचार्य जी के देहावसान के उपरान्त उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथजी आचार्य पद पर आसीन हुए परन्तु ८ वर्षों बाद उनके देहावसान के उपरान्त श्री विट्ठलनाथजी आचार्य पद पर सं० १५९५ प्रतिष्ठित हुए। उनके नेतृत्व में पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्प्रदाय को पर्याप्त यश की प्राप्ति हुई। सं० १६४२ वि० में विट्ठलनाथजी का गोलोकवास हुआ। गो० विट्ठलनाथजी ने अपने पिता के सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार हेतु उनके ग्रन्थों का अध्ययनकर भाव पूर्ण टीकाएँ लिखीं तथा कुछ स्वतंत्र ग्रन्थों की भी रचना की। उनके द्वारा रचित लगभग बारह ग्रंथ हैं। विट्ठलनाथजी के भक्तों की संख्या बहुत बड़ी थी। इन भक्तों में २५२ वैष्णव भक्तों को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। सभी भक्त पुष्टिमार्ग के अनुयायी, कुशल गायक और प्रभावी रचनाकार थे। गोसाई विट्ठलनाथ ने इन भक्तों में सर्वश्रेष्ठ चार तथा अपने पिता के शिष्यों में चार रचनाकारों को मिलाकर ही 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की थी। इन आठों कवियों की अनन्य भक्ति, संगीत साधना तथा काव्य निष्ठा केवल कृष्ण भक्ति शाखा की ही नहीं हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य धरोहर है।

सूरदास : (१४७८ ई०-१५८२ ई०) भक्तिकाल की कृष्णभक्ति शाखा को अपने पदों से सर्वाधिक समृद्धि प्रदान करने वाले सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट सीही ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सूर के जन्म-मृत्यु संबंधी वर्ष को लेकर विद्वानों में मतभेद है। अधिकांश अध्येता उनका जन्म सं० १५३५ (१४७८ ई०) तथा मृत्यु सं० १६४० (१५८३ ई०) मानते है। वे जन्मांध थे या बाद में नेत्रहीन हुए, इस बात पर भी मतैक्य नहीं है– लेकिन इस बात पर सभी एकमत हैं कि अष्टछाप के कवियों में भक्ति और काव्य दोनों दृष्टियों से सूर का साहित्य सर्वोत्कृष्ट है।

वल्लभ सम्प्रदाय से सम्बद्ध होने के पूर्व सूरदास के पदों में दैन्य एवं विनयभाव की प्रधानता रही है– 'हौं सब पतितन कौ नायक' । 'हौं हरि सब पतितन कौ टीकौ'। वल्लभाचार्यजी की सत्प्रेरणा से वे दास्य, सख्य एवं माधुर्य भाव के पद लिखने लगे। वल्लभाचार्यजी ने श्री मद्भागवत की स्वरचित सुबोधिनी टीका की व्याख्या कर उन्हें कृष्ण-लीला से सुपरिचत कराया।,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरदासजी ने इसे स्वीकार भी किया है- 'श्री वल्लभ गुरुत्व सुनायो लीलाभेद बतायो,' वल्लभाचार्य ने सूर से कहा– 'सूर ह्वैकै धिधियात काहे को हौ, कछु भगवद् लीला वरनन करू'।

सूर विरचित कृतियों की संख्या पच्चीस मानी जाती है जिनमें कुछ की प्रामाणिकता को लेकर सन्देह है। सूर-सागर, सूर-सारावली, साहित्य-लहरी आदि उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। उन्होंने लगभग सवा लाख पदों की रचना की थी, जिनमें केवल ५००० पद उपलब्ध हैं जो 'सूर सागर' में संकलित हैं, इन पदों की भाषा भंगिमा तथा भावाकुलता अनूठी है। भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष दोनों दृष्टियों से उनकी रचनाएँ बेजोड़ हैं। सूर के पदों में भक्ति, वात्सल्य तथा वियोग शृंगार का सजीव मार्मिक एवं स्वाभाविक वर्णन हर किसी को मोह लेता है। इन्होंने वात्सल्य के पदों की रचना के कारण सर्वाधिक कीर्ति अर्जित की है। सूर के पद जन-जन के कंठ में विराजते हैं। 'जसोदा हरि पालने झुलावे' और 'शोभित कर नवनीत लिए' जैसे पदों में शिशु कृष्ण का भावपूर्ण वर्णन हो या 'मैया मैं नहिं माखन खायो' और 'मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ' का प्रभावी बाल वर्णन सूरदास का स्पर्श पाकर अद्वितीय बन गए हैं। भ्रमर गीत संबधी पद सूर की नवीन उद्भावना, भावुकता तथा दार्शनिक गांभीर्य के द्योतक हैं। उनकी काव्यमर्मज्ञता तथा भक्ति निष्ठा की प्रशंसा में कई उक्तियाँ प्रचलित हैं। 'सूर सूर तुलसी शशि', 'सूर शशि तुलसी रवि', 'सूर कबित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै' के अतिरिक्त निम्नलिखित दोहा जनमानस और विद्वन्मंडली में उनकी लोकप्रियता प्रमाणित करता है।

किधौं सूर को सर लाग्यो, किधौं सूर की पीर।
किंधौ सूर को पद सुन्यो, तन-मन धुनत शरीर।

सूरदास के देहावसान को आसन्न जानकर गोस्वामी विट्ठलनाथ ने भावाकुल होकर कहा था– 'पुष्टि मारग को जहाज जात है, सो जाकों कछू लेनो होय सो लेउ'

सूर विरचित एक पद :

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पर आवे।।
कमल नैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावे।
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै।।
जिहिं मधुकर अम्बुज रस चाख्यौ क्यों करील फल खावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।।

कुम्भनदास (१४६८ ई० – १५८२ ई०) गोवर्द्धन पर्वत के निकट 'जमनावती' ग्राम निवासी कुंभनदास मूलत: किसान थे। परासौली चंद्रसरोवर के निकट इनके खेत थे। वहीं से होकर ये श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तन सेवा हेतु जाया करते थे। गोखा क्षत्रिय कुल में सं० १५२५ (१४६८ ई०) को जन्मे कुम्भनदास भगवद भक्त थे तथा गरीब होने के बावजूद अत्यंत स्वाभिमानी थे। १४९२ ई० में महाप्रभु वल्लभ ने सर्वप्रथम इन्हें दीक्षा दी थी। अष्टछाप के प्रथम चार कवियों में वल्लभाचार्यजी के ये प्रथम शिष्य थे। इनकी गायन कला से प्रसन्न होकर ही आचार्यजी ने इन्हें मन्दिर में कीर्तन की सेवा प्रदान की थी। इनके पद आम जनता में प्रेमपूर्वक गाए जाते थे। कहा जाता है कि इनके द्वारा रचित पद को किसी गायक के कंठ से सुनकर सम्राट अकबर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने इसके रचयिता को फतेहपुर सीकरी आने का निमंत्रण देकर उन्हीं से पद सुनने की इच्छा प्रगट की। सम्राट के बुलावे पर कुम्भनदास सीकरी तो गए परन्तु अनिच्छापूर्वक। उनका यह भाव तब प्रगट हुआ जब सम्राट ने उनसे गायन का अनुरोध किया। कुंभनदास ने अधोलिखित पद सुनाया–

भक्तन को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पन्हैया टूटी, बिसरी गयो हरि नाम।।
जाकें मुख देखे दुख लागे, ताको करन परी परनाम।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन यह सब झूठो धाम।।

अपने आराध्य के प्रति अगाध भक्ति के साथ-साथ यह पद रचनाकार की निस्पृहता, निर्भीकता का भी परिचायक है। यह पद साहित्यकार की तेजस्विता तथा स्वाभिमान के लिए आज भी गौरव के साथ दुहराया जाता है। कुंभनदास जी का निधन संवत १६३९ वि० (१५८२ ई०) के आसपास हुआ था। अष्टछाप के कवियों में सबसे लंबी आयु (११३ वर्ष) कुंभनदासजी ने ही प्राप्त की थी।

कुंभनदासजी द्वारा रचित पद :

जो पै चोप मिलन की होय।
तो क्यों रहे ताहि बिनु देखे लाख करौ जिन कोय।।
जो यह बिरह परस्पर व्यापै तौ कछु जीवन बनैं।
लो लाज कुल की मरजादा एकौ चित न गनैं।।
'कुंभनदास' प्रभु जा तन लागी, और न कछू सुहाय।
गिरिधर लाल तोहि बिनु देखे, छिन-छिन कलप बिहाय।

परमानन्ददास (१४९३ ई०– १५८३ ई०) अष्टपद के कवियों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी परमानन्ददास कन्नौज निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। एक निर्धन परिवार में सं० १५५०वि० (१४९३ ई०) को जन्मे परमानन्ददास का मन बचपन से ही भगवद्भक्ति मे रमता था। जनश्रुति है कि जन्म के दिन किसी सेठ ने इनके पिता को प्रचुर धन प्रदान किया था जिससे परिवार को परम आनन्द की प्राप्ति हुई थी, इसी कारण इनका नाम परमानन्ददास रखा गया।

परमानन्ददास कला एवं साहित्य के प्रेमी थी। वल्लभदासचार्य जी के सम्पर्क में आकर वे आजीवन श्रीनाथजी के मन्दिर में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवारत रहे। उन्होंने न विवाह किया और न ही वे धन उपार्जन हेतु सक्रिय हुए। इनकी भक्ति विषयक रचनाओं की प्रभविष्णुता से प्रभावित होकर कई विद्वान इन्हें अष्टछाप के कवियों में सूरदास एवं नन्ददास के उपरान्त परिगणित करते हैं। इनके पदों का संग्रह 'परमानन्द सागर' के नाम से प्रकाशित है जिसमें लगभग दो हजार पद संग्रहीत है। अन्य प्रमुख कृतियां हैं– 'दान-लीला', 'ध्रुव चरित्र' 'परमानन्ददासजी के पद'।

बाल-लीला, माधुरी लीला, वियोग शृंगार, मान, नखशिख वर्णन आदि का वर्णन करने में इन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई है। भाषा, भाव तथा अलंकार की दृष्टि से इनकी रचनाएँ विमुग्धकारी हैं। रचनाओं की गेयता पदों के सौन्दर्य को बढ़ा देती हैं। सं० १६४० वि० (१५८३ ई०) के लगभग इनका गोलोकवास हुआ था। कहा जाता है कि जन्माष्टमी के दिन आनन्दातिरेक में नृत्य करते हुए ही इनकी मृत्यु हुई थी।

परमानन्ददासजी का एक पद :

प्रीति तो नन्द नन्दन सों कीजै।
सम्पति विपति परे प्रतिपालै कृपा करै तो जीजै।।
परम उदार चतुर चिन्तामणि सेवा सुमिरन मानै।
चरन कमल की छाया राखे अंतरगति की जानै।।
बेद पुरान भागवत भाषै, कियो भक्त को भायो।
'परमानन्द' इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पायो।।

कृष्णदास (१४९५ ई० – १५८१ ई०)

महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्यों में कृष्णदास की प्रसिद्धि कवि गायक की अपेक्षा व्यवस्थापक एवं दक्ष प्रबंधक की है। १३ वर्ष की उम्र मे अपने जन्म स्थान गुजरात से ब्रज में आए कृष्णदास जी का जीवन वल्लभाचार्यजी से दीक्षा लेने के उपरान्त कृष्णभक्ति की ओर उन्मुख हो गया था। गुजरात के राजनगर (अहमदाबाद) के चिलोतरा ग्राम में एक शूद्र परिवार में सं० १५२२ वि० (१४९५ ई०) में कृष्णदास का जन्म हुआ था। इनके पिता अनैतिक ढंग से धनोपार्जन करते थे। जिससे क्षुब्ध होकर कृष्णदास ने घर छोड़ दिया और वल्लभाचार्य की शरण में आ गए।

अपनी व्यावहारिक बुद्धि तथा प्रबंध कौशल से इन्होंने वल्लभाचार्य को प्रभावित किया फलत: आचार्यजी ने इन्हें श्रीनाथ मन्दिर का अधिकारी नियुक्त कर दिया। संभवत: इसी कारण इनका नाम कृष्णदास अधिकारी प्रचलित हो गया। श्रीनाथजी के मन्दिर को नवीन रूप प्रदान करने तथा उसे वैभव सम्पन्न करने में इनका विशिष्ट अवदान था। मन्दिर से बंगाली पुजारियों को अपदस्थ करने में भी इनकी युक्ति सफल रही थी। कहा जाता है कि इनका गुप्त संबंध गंगाबाई नामक स्त्री से था जिसके कारण विट्ठलाथजी से इनका मनमुटाव हुआ था।

कृष्णदास जी ने लगभग २५० पदों की रचना की है। गुजराती होने के बावजूद ब्रजभाषा में रचित पदों में राधाकृष्ण प्रेम वर्णन, शृंगार तथा रूप सौन्दर्य का सुन्दर अंकन है। इनकी रचनाओं में काव्य कौशल अपेक्षाकृत कम है। सं० १६३८ के आसपास (१५८१ ई०) इनकी मृत्यु कुएँ में गिरने से हुई थी।

कृष्णदास विरचित पद :

मेरौ तौ गिरिधर ही गुनगान।
यह मूरत खेलत नैनन में, यही हृदय में ध्यान।।
चरण रेनु चाहत मन मेरौ, यही दीजिए दान।
'कृष्णदास' को जीवन गिरिधर, मंगल रूप निधान।।

नन्ददास (१५३३ ई०- १५८३ ई०) : अष्टछाप आठ कवियों में वय की दृष्टि से नन्ददास सबसे छोटे हैं, परन्तु काव्य-साधना, भाषिक-छटा और बहुमुखी प्रतिमा के कारण इनका स्थान सूरदास को छोड़कर सर्वोच्च है। नन्ददास का जन्म सं० १५९० वि० (१५३३ई०) में सोरों के निकट रामपुर ग्राम में हुआ था। कुछ लोग इन्हें गोस्वामी तुलसीदास का भाई स्वीकार करते हैं। कहा जाता है कि गो० बिट्ठलनाथ से शिष्य के रूप में दीक्षित होने के पूर्व नन्ददास घोर संसारी, लौकिक व्यक्ति थे। गुरु कृपा से वे भगवद्भक्त बने।

अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न नंददासजी ने लगभग १५ ग्रंथों की रचना की है। इन ग्रन्थों में प्रमुख हैं– अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, रस मंजरी, रूप मंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बारह खड़ी, श्याम सगाई, सुदामा चरित ,भँवरगीत, रास पंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, गोवर्द्धन लीला, नंददास पदावली। 'अनेकार्थ मंजरी' पर्याय कोश है। 'विरह मंजरी' में विरह का अत्यंत भावपूर्ण वर्णन किया गया है। 'रस मंजरी' में नायिका भेद विवेचन के साथ नारी चेष्टाओं का चित्रण है। यह रचना शृंगार की कोटि में आती है। 'भँवरगीत' में नंददास की गोपिकाओं की तार्किकता तथा विवेक दृष्टि पाठकों को विमुग्ध करती है। इस कृति के कारण नंददास को विशेष ख्यातिप्राप्त है। 'रास पंचाध्यायी' में कृष्ण की रासलीला से संबद्ध रचनाएँ है।

नंददास का रचना वैविध्य यह प्रमाणित करता है कि उन्होंने गंभीर शास्त्रानुशीलन किया था। भावपक्ष तथा कलापक्ष का उत्कर्ष उनकी काव्य-सामर्थ्य को प्रमाणित करता है। संभवत: इसीलिए नंददास के बारे में यह उक्ति प्रचलित है।

'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया'

परिमार्जित भाषा, संगीत मर्मज्ञता तथा काव्य सौष्ठव उन्हें उच्च कोटि का रचनाकार सिद्ध करती है। सं० १६४० (१५८३ ई०) को मानसी गंगा के तट पर इनका देहावसान हुआ था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नंददास द्वारा रचित पद : (भँवर गीत)

कहन स्याम संदेस एक हौं तुम पै आयौ।
कहन समय एकांत कहूँ औसर नहिं पायौ।।
सोचत ही मन में रह्यौ, कब पाऊँ इक ठाऊँ।
कहि संदेस नँदलाल कौ, बहुरि मधुपूरि जाऊँ।।
सुनो ब्रज नागरी।।
सुनत स्याम कौ नाम, ग्राम घर की सुधि भूली।
भरि आनंद-रस हृदय प्रेम-बेली द्रुम फूली।
पुलिक रोम सब अँग भए, भरि आए जल नैन।
कंठ घुटे, गद्‌गद गिरा, बोले जात न बैन।।
विवस्था प्रेम की।।

गोविन्द स्वामी (१५०५ ई०-१५८५ ई०) : भरतपुर (राजस्थान) के आँतरी गाँव में सं० १५८५ वि० को एक सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में जन्मे गोविन्द स्वामी आरम्भ से ही कीर्तन-भजन के अनुरागी थे। उन्होंने अपनी पत्नी और पुत्री को त्यागकर ब्रज मंडल में बसना स्वीकार किया। वे सुकवि तो थे ही प्रसिद्ध संगीतशास्त्री भी थे। कहा जाता है कि संगीत सम्राट तानसेन ने भी इनसे संगीत शिक्षा प्राप्त की थी। किसी भक्त द्वारा गोविन्द स्वामी रचित पद सुनकर विट्ठलनाथजी बहुत प्रभावित हुए और इन्हें दीक्षा देकर श्रीनाथजी की कीर्तन सेवा में लगा दिया।

इनके पदों की संख्या लगभग ६०० है। २५२ पद 'गोविन्दस्वामी के पद' कृति में संकलित हैं। इन्होंने बाल लीला तथा राधाकृष्ण शृंगार के पद रचे हैं। सहज एवं मार्मिक अभिव्यक्ति तथा भाव गाम्भीर्य इनके पदों की खासियत है। इनका देहावसान गोवर्द्धन में सं० १६४२ वि० (१५८५ ई०) को हुआ था। काव्य की अपेक्षा गेयता की दृष्टि से इनके पद अधिक प्रभावशाली हैं।

गोविन्द स्वामी रचित बाल लीला का एक पद :

झूलो पालने बलि जाऊँ।
श्याम सुन्दर कमल लोचन, देखत अति सुख पाऊँ।।
अति उदार बिलोकि, आनन पीवत नाहिं अघाऊँ।
चुटकी दै दै नचाऊँ, हरि कौ मुख चूमि-चूमि उर लाऊँ।।
रुचिर बाल-विनोद तिहारे निकट बैठि कै गाऊँ।
विविध भाँति खिलौना लै-लै 'गोविन्द' प्रभु को खिलाऊँ।।

छीत स्वामी (१५१५ ई०-१५८५ ई०) छीतस्वामी मथुरा के चतुर्वेदी ब्राह्मण थे और आरंभ में बड़ी उद्दंड प्रकृति के थे। इनके घर में पंडागिरी और जजमानी होती थी। कहा जाता है कि ये बीरबल के पुरोहित थे। इनका प्रचलित नाम छीतू चौबे था और ये मथुरा में लड़ाई-झगड़े तथा चिढ़ाने आदि के लिए कुख्यात थे। अपनी यौवनावस्था में इन्होंने विट्ठलनाथजी की परीक्षा लेने के लिए खोटा सिक्का, थोथा नारियल उन्हें भेट किया परन्तु गोस्वामीजी ने अपनी दिव्य शक्ति से उन्हें चमत्कृत कर दिया। छीतू चौबे को बड़ी ग्लानि हुई और वे विट्ठलनाथजी के शिष्य बन गए। गोस्वामीजी ने इन्हें दीक्षा दी और अष्टछाप में शामिल कर लिया।

इनके मन में ब्रज-भूमि के प्रति बड़ा आदर भाव था। इनकी रचनाएँ उत्कृष्ट काव्य का प्रमाण भले ही न हो, परन्तु वर्णन की सहजता एवं सरसता प्रभावित करती है। अपने आराध्य कृष्ण के प्रति इनकी अनन्य भक्ति हृदयस्पर्शी है। इनके द्वारा कीर्तन गायन हेतु रचे पदों की संख्या लगभग २०० है जो पदावली में संकलित हैं। गोवर्द्धन के निकट पूंछरी ग्राम में इनका देहांत सं० १६४२ वि० को हुआ था।

छीतस्वामी रचित आसक्ति का पद :

अरी हौं स्याम रूपी लुभानी।
मारग जाति मिले नंदनन्दन, तन की दसा भुलानी।।
मोर मुकुट सीस पर बाँकौ, बाँकी चितवनि सोहै।
अंग अंग भूषन बने सजनी, जो देखै सो मोहै।।
मो तन मुरिकै जब मुसिकानै, तब हौं छाकि रही।
'छीत स्वमी' गिरिधर की चितवनि, जाति न कछू कही।।

चतुर्भुजदास (१५३० ई०- १५८५ ई०) : अष्टछाप के प्रतिष्ठित कवि कुंभनदास के सबसे छोटे पुत्र चतुर्भुजदास का जन्म सं० १५८७ (१५३० ई०) को जमुनावती ग्राम में हुआ था। भजन-कीर्तन और भक्ति का संस्कार इन्हें पिता से विरासत में मिला था अत: इनका मन परिवार एवं गृहस्थी से विरत रहता था। कुंभनदासजी ने इन्हें संगीत की शिक्षा प्रदान कर पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित कराया था। संगीत एवं कविता में इनकी विशेष रुचि थी। ये आजीवन श्रीनाथजी के मन्दिर में सेवारत थे। इनका देहावसान सं० १६४२ वि० (१५८५ ई०) को हुआ था। इनकी उपलब्ध कृतियाँ है– 'चतुर्भुज कीर्तन संग्रह', कीर्तनावली और दानलीला। रचनाओं में 'भक्ति और शृंगार की छटा यत्र-तत्र परिलक्षित होती है।

चतुर्भुजदास रचित पद :

जसोदा कहा कहो हौं बात।
तुम्हारे सुत के करतब मापै, कहत कहे नहिं जात।।
भाजन फोरि, ढोरि सब गोरस, लै माखन दधि खात।
जो बरजौं तो आँखी दिखावै, रंचहु नाहिं सकात।।
और अटपटी कहाँ लौ बरनौं, छुवत पानि सों गात,
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर के गुन हौं, कहति कहति सकुचात।।

अंतत: कह सकते हैं कि अष्टछाप के इन साधकों की रचनाएँ कृष्णलीला पर केन्द्रित होने के कारण विषय की दृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से भले ही सीमित प्रतीत होती हों, परन्तु संगीत की विविध राग-रागिनियों तथा कृष्ण भक्ति के विविध आयामों के स्पर्श के कारण इनकी महिमा असंदिग्ध है, कहने की आवश्यकता नहीं कि अष्टछाप के इन भक्त कवियों की संगीत सरिता में प्रवाहित भाव-धारा ने अपनी स्वतंत्र उद्‌भावना से जो राह बनाई, वह अप्रतिम है। यह सरिता वस्तुत: भक्ति भागीरथी और काव्य-कालिन्दी का ऐसा संगम है जिसमें स्नान कर काव्य रसिकों और भावुक भक्तों को युगों तक आनंद की प्राप्ति होती रहेगी। विशद अर्थ में अष्टछाप की कविता भक्ति काव्य एवं संगीत की पावन त्रिवेणी है।

बागुईआटी, कोलकाता

■

बनेचन्द मालू

आदमी नहीं था

किसी बेचारे का एक्सीडेंट हो गया।
कार तो भाग गई पर लोगों को भी नहीं आई दया।
खून से लथपथ पड़ा था सड़क पर।
कोई पास के अस्तपाल नहीं ले जा रहा था।
क्योंकि पुलिस का था डर।
सवालों का जवाब देना होगा।
कैसे हुआ, किसने देखा, कहना होगा।
बाद में थाना भी जाना होगा, कोर्ट में देनी होगी गवाही।
इस तरह घसीटा जाना पड़ेगा, क्यों लें ऐसी वाहवाही।
समय बीत गया, बेचारा ढेर हो गया।
किसी नवयुवती का सिंदूर, नन्हें बच्चों की आशा,
चिर निद्रा में सो गया।
घर में कोहराम मच गया, मातम छा गया।
हंसी-खुशी भरे जीवन को काल-चक्र खा गया।
आने जाने वाले सान्त्वना दे रहे थे।
पूछ-पूछ कर घटना का जायजा ले रहे थे।
एक औरत अफसोस जता रही थी,
कह रही थी व्यस्त सड़क थी भीड़ तो बहुत थी।
फिर पड़ा क्यों रहा, अस्पताल भी पास में वहीं था।
मैंने कहा भीड़ तो बहुत थी
अस्पताल भी पास में वहीं था,
पर भीड़ में कोई आदमी नहीं था।

५-बी, श्री निकेत, ११ अशोका रोड, अलीपुर,
कलकत्ता - ७०० ०२७

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org